अखबार का अंगोछा

आबिद सुरती

दो वहमों ने अम्मी का पिण्ड मरते दम तक नहीं छोड़ा। एक था समन्दर का और दूसरा व्यायाम का डर। उसके अनुसार कसरत करने से हड्डियाँ टूटती हैं और समन्दर में तैरने से जान चली जाती है। ये दोनों डर जाने कैसे उसके मन में घुसकर कुंडली मारकर बैठ गए थे, यह मैं आज तक नहीं समझ पाया।

यह हकीकत है कि समन्दर से मेरा लगाव मिटाने की अम्मी ने जितनी कोशिशें कीं, मैं पानी की ओर उतना ही आकर्षित होता गया। मानो, समन्दर मेरे भीतर लहराता हो, ऐसा मैं अकेले में महसूस करता। चट्टान-सी ऊँची लहरें बल खाती हुई आकर मुझे स्वप्न में भिगो देतीं।

वे दिन छुट्टियों के थे और त्यौहार के भी। मैं नई पोशाक पहनकर नमाज़ पढ़ने के बहाने घर से निकला। और अपने दोस्तों के साथ सीधा चौपाटी जा पहुँचा। हमने सारे कपड़े उतारकर किनारे की रेत पर रखे और छपाक से पानी में कूद पड़े। मेरा जिस्म मछली की तरह गोता लगाकर सतह पर आया। मेरी खुशी दुगुनी थी। ईद की सुहानी सुबह और मेरे मन में बसे समन्दर से मुलाकात ।

घण्टे भर में थककर दोस्त पानी से बाहर निकल गए। मैं कुछ देर और रुका रहा। सामने से उछल-उछलकर आती मौजों (लहरों) से टकराने का मज़ा कुछ और ही होता है। गहरे पानी में डुबकियाँ लगाने का मज़ा भी मैं गँवाना नहीं चाहता था। और अन्त में तैरते-तैरते किनारे आकर जब मैंने सूखी रेत पर पाँव रखा तो मेरा दिल दहल गया। मेरे लँगोटिया दोस्त मुझे अकेला छोड़कर चले गए थे। यही नहीं, अपने साथ मेरी नई कमीज़ और निकर भी लेते गए थे।

मैं रुआँसा हो गया। बिना कपड़े चौपाटी से घर कैसे पहुँचा जाए? कोई तरकीब लड़ाकर किसी तरह पहुँच भी जाऊँ तो अम्मी को मुँह दिखाना मुश्किल था।

मेरी झुँझलाहट आँसुओं में तब्दील हो, इससे पहले उड़ता हुआ अखबार का एक पन्ना मुझ पर लिपट गया। मेरी आँखें यकायक चमक उठीं। मैंने लपककर उसे उठा लिया। दूसरे महायुद्ध की बड़ी-बड़ी सुर्खियों और अन्य ताज़ा खबरों ने मेरी लाज रख ली। अखबार को मैंने लँगोट की तरह कमर पर लपेट लिया।

एक समस्या का समाधान तो हो गया था। हौले-हौले कदम बढ़ाता हुआ मैं घर की ओर बढ़ चला। सुबह के समय रास्ते पर उतनी भीड़ नहीं थी। कभी कोई गाड़ी सपाटे से गुज़रती तो अखबार का गमछा फड़फड़ाने लगता। पास से गुज़रते लोग बिसूरते हुए मेरे हुलिए को निहारते हुए निकल रहे थे।

तभी मुझे एक विक्टोरिया दिखाई दी। मैं उसके पीछे लटककर कुछ दूर तक गया। यहाँ से मेरा घर नाक की सीध पर था। पन्द्रह मिनिट का पैदल का रस्ता था।

अभी पाँच मिनट भी नहीं हुए थे कि कहीं से एक कुत्ता आकर मेरे पीछे पड़ गया। मैं भागने लगा तो मेरे हाथ से अखबार का पन्ना छूट गया। कुत्ता लगातार भौंके जा रहा था। मैं बेतहाशा दौड़ने लगा। कुत्ते के दाँत गड़ने का डर मुझ पर ऐसे सवार था कि मैंने मोहल्ले में आकर ही दम लिया।

मेरे दोस्त मेरा इन्तज़ार करते हुए नुक्कड़ पर खड़े थे। मुझे इस हाल में देखकर वे ठहाके मारकर हँसने लगे। एक-दूसरे को धौल-धप्पे लगाते हुए वे मेरी खिल्ली उड़ा रहे थे। मेरी नई पोशाक दूर से दिखाकर मुझे चिढ़ा भी रहे थे।

यह ज़िल्लत मुझसे सहन नहीं हुई। मैं वास्तव में रोने लगा। आखिर में मुझ पर उपकार-सा करते हुए उन्होंने मेरी कमीज़ और निकर मेरे मुँह पर फेंकी और वे चलते बने। मैं झुलसकर रह गया।

बड़ा होकर जब मैं व्यंग्य चित्रकार बना तो एक मनोवैज्ञानिक ने उसका कारण बताया – यदि बचपन में बच्चों ने मेरा कार्टून नहीं बनाया होता, और मुझे इतनी गहरी चोट न लगी होती, तो आज मैं कार्टूनिस्ट भी नहीं होता! क्या पता? चक मक